कर-लक्खणं

(सामुद्रिक शास्त्र)

सम्पादन-अनुवाद

प्रो. प्रफुल्लकुमार मोदी

भारतीय ज्ञानपीठ

पेपरबैक
पहला संस्करण : 1947
दूसरा संस्करण : 1964
तीसरा संस्करण : 1999

ISBN 81 - 263 - 0684 - X

मूर्तिदेवी जैन ग्रन्थमाला : प्राकृत ग्रन्थांक 2

प्रकाशक :
भारतीय ज्ञानपीठ
18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड
नयी दिल्ली-110 003

मुद्रक : नागरी प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032

चौथा पेपरबैक संस्करण : 2001
मूल्य : 15 रु.

© भारतीय ज्ञानपीठ

KARA-LAKKHAṆAṀ
(Palmistry)
Edited by Prof. P.K. Modi

Published by
Bharatiya Jnanpith
18, Institutional Area, Lodi Road
New Delhi-110 003

Fourth Paperback Edition : 2001
Price : Rs. 15

प्राक्कथन

(प्रथम संस्करण, 1947 से)

मनुष्य की हथेलियाँ (करतल) अपनी आकृति, बनावट, मृदुता, रंग, रूप और रेखाओं की दृष्टि से, एक-दूसरे से अति भिन्न होती हैं। शरीरशास्त्रियों का कहना है कि शरीर का यह ढाँचा जिस चमड़े से आवृत है वह कुछ तन्तुओं से बँधा है। वे सब एक-दूसरे से सम्बन्धित ही नहीं हैं, बल्कि उनसे मोड़ के स्थानों पर कुछ चिह्न भी उठ आये हैं। इन हथेलियों की विषमता का कारण नाना आकृति की मांसपेशियाँ हैं। शरीरशास्त्री यह विश्वास नहीं करते कि यन्त्ररूप में बने हुए घुमावदार मोड़ों और संकेतों का आध्यात्मिक रहस्यमय या भविष्य बतानेवाला कोई अर्थ होता है।

मनुष्य में अपने भविष्य जानने की इच्छा उतनी ही पुरातन है जितना कि स्वयं मनुष्य, और यह उतनी ही बलवती होती जाती है, ज्यों-ज्यों मनुष्य का वातावरण हर तरफ अनिश्चित-सा दिखता है। प्रति मनुष्य में आश्चर्यरूप से अति भिन्न पाई जानेवाली हथेलियाँ ही भविष्य-ज्ञानपद्धति का आधार हैं और इसे सामुद्रिक (हस्तरेखा) विद्या कहते हैं। हाथ की रेखाओं और चिह्नों का, खास कर हथेली का लाक्षणिक अर्थ है। वे हमारे मानसिक और नैतिक स्वभावों से ही सम्बन्धित नहीं हैं, बल्कि व्यक्ति की भावी घटनाओं की गतिविधियों पर भी प्रकाश डालते हैं। यदि कुछ चिह्न हमारे अतीत की बातें बताते हैं, तो कुछ भविष्य की।

शरीर पर के चिह्नों से मानवीय प्रवृत्तियों का भविष्य कहना एक पुराना सिद्धान्त है तथा प्रायः इसका उल्लेख प्राचीन भारतीय साहित्य में मिलता है और सामुद्रिक विद्या उससे एकदम सम्बन्धित है। चूँकि शारीरिक चिह्नों की व्याख्या सिर्फ़ लाक्षणिक है, पर पूर्व और पश्चिम देशों की मौलिक मान्यताएँ एक दूसरे से नहीं मिलतीं।

भारतीय पद्धति रेखाओं, शंख तथा चक्रों पर ज़्यादा जोर देती है; जब कि पाश्चात्य पद्धति में नाना आकृतियों और रेखाओं को महत्त्व दिया गया है, तथा उसमें एक ही रेखा के अर्थों में बहुधा भेद पड़ जाता है। चाहे मौलिक मान्यताएँ प्रामाणिक न हों तथा बहुत से अर्थ तर्कपूर्ण भले न हों, पर एक तथ्य तो ज़रूर है कि अनेक लोगों के लिए यह सामुद्रिक विद्या आकर्षण की वस्तु है। तथा गत कुछ वर्षों में प्रधान-प्रधान व्यक्तियों के हस्तरेखा-चित्र लिये गये हैं और उनसे कुछ आनुमानिक निष्कर्ष निकाले गये हैं। सामुद्रिक विद्या बहुतों के लिए संसारी जीविका का धन्धा हो गया है, परन्तु 'करलक्खण', जो कि यहाँ से प्रथम बार सम्पादित हो रहा है, के ग्रन्थकार का उद्देश्य धार्मिक ही है। इस ग्रन्थ के लिखने में उनका उद्देश्य धार्मिक संस्थाओं को इस योग्य बनाने का है कि जिससे वे व्यक्तियों की योग्यता को माप सकें और उनको (पुरुष/स्त्री को) धार्मिक प्रतिज्ञाएँ तथा नियम दे सकें।

इस सामुद्रिक शास्त्र का, भविष्य कहने की पद्धति के रूप में, प्राचीन भारतीय विद्या में स्थान है और उस विषय का प्रतिपादन करनेवाली यह पुस्तिका 'करलक्खण' भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित की जा रही है। इसका प्राकृत पाठ संस्कृत छाया तथा हिन्दी शब्दार्थ के साथ है और सम्पादक प्रफुल्लकुमार मोदी ने यह

सब हमारे सामने स्पष्ट रूप से रखा है। मोदी जी एक प्रतिभाशाली नवयुवक विद्वान् हैं और यह संस्करण उनकी भावी योग्यताओं को बतलाता है। अपने पिता प्रो. डॉ. हीरालाल जैन की मातहती में शिक्षित हुए इस युवक से सम्भावना है कि वह भविष्य में संस्कृत और प्राकृत साहित्य के अनुसन्धानों से हमें बहुत कुछ दे सकेगा।

श्री साहू शान्तिप्रसाद जैन ने प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता के बहुविध रूपों को संसार के सामने रखने के आदर्श उद्देश्यों से प्रेरित हो भारतीय ज्ञानपीठ को स्थापित किया है। उनकी पत्नी श्रीमती रमारानी भी उनके उत्साह और उदारता के अनुरूप ही संस्था के प्रकाशनों में तीव्र अभिरुचि रखती हैं। वे दोनों हमारे अति धन्यवाद के पात्र हैं। हमें अनेक आशाएँ हैं कि यह संस्था न्यायाचार्य पं. महेन्द्रकुमार जी शास्त्री के उत्साहपूर्ण प्रबन्ध के नीचे अनेक विद्वानों के सक्रिय सहयोग से बहुत से योग्य प्रकाशन सामने लाएगी और इस तरह हमारे देश की सांस्कृतिक परम्परा को और समृद्ध करेगी।

कोल्हापुर —**आ. ने. उपाध्ये**

15 अगस्त 1947

प्रस्तावना

हस्तरेखा ज्ञान का प्रचार भारतवर्ष में बहुत प्राचीन काल से रहा है। पुराणों में, बौद्धों के पालि धर्मशास्त्रों में तथा जैनों के प्राकृत आगमों में भी इसका उल्लेख पाया जाता है। संस्कृत में उसे सामुद्रिक शास्त्र कहा गया है। 'अग्निपुराण' के अनुसार प्राचीन काल में समुद्र ऋषि ने अपने शिष्य गर्ग को इस विद्या का अध्ययन कराया था (लक्षणं यत्समुद्रेण गर्गायोक्तं यथा पुरा— *अग्निपुराण*)। वराहमिहिर ने भी अपने सुप्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थ 'बृहत्संहिता' के महापुरुषलक्षण नाम के सर्ग (67-69) में इसका उल्लेख किया है। यहाँ तक कि 'बृहत्संहिता' के टीकाकार उत्पलभट्ट ने 'यथाह समुद्रः' कहकर बहुत से श्लोक समुद्र ऋषि प्रणीत उद्धृत किये हैं। 'हरिवंशपुराण' के रचयिता जिनसेनाचार्य ने भी 'नरलक्षण' के कर्ता का उल्लेख किया है और उन्हीं लक्षणों का वर्णन 'हरिवंशपुराण' के 23वें सर्ग के 55वें श्लोक से 107वें श्लोक तक पाया जाता है। उनमें से 13 (85-97) श्लोकों का विषय हस्तलक्षण और उनकी सार्थकता है। अतः वे पूर्णतः हस्तरेखाज्ञान विषयक कहे जा सकते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ हस्तरेखा-ज्ञान सम्बन्धी छोटी-सी पुस्तिका है। इस ग्रन्थ की जो प्राचीन हस्तलिखित प्रति मुझे उपलब्ध हुई थी, उस पर ग्रन्थ का नाम 'सामुद्रिक शास्त्र' दिया गया है। किन्तु ग्रन्थ का असली नाम 'करलक्खणं' है; जैसा कि उसकी आदि और अन्त

की गाथाओं से सुस्पष्ट हो जाता है। यह ग्रन्थ 61 प्राकृत गाथाओं में पूर्ण हुआ है। ग्रन्थ के विषय का सार इस प्रकार है–

प्रथम गाथा में रचयिता ने जिन भगवान् महावीर को प्रणाम कर पुरुष और स्त्रियों के करलक्षण कहने की प्रतिज्ञा की है। दूसरी गाथा के अनुसार पुरुष को लाभ व हानि, जीवन व मरण तथा जय व पराजय रेखानुसार ही प्राप्त होते हैं। गाथा 3 के अनुसार पुरुषों के लक्षण उनके दाहिने हाथ में और स्त्रियों के उनके बायें हाथ में देखकर शोधना चाहिए। इसके आगे कर्ता ने अँगुलियों के बीच अन्तर का फल-वर्णन किया है (गा. 4-6); फिर उनके पर्वों का वर्णन है (गा. 6); तत्पश्चात् मणिबन्ध की रेखाओं का उल्लेख (गा. 7-11) कर विद्या, कुल, धन, रूप और आयुसूचक पाँच रेखाओं का वर्णन किया है (गा. 12-22)। आगे की तीन गाथाओं (23-25) में रेखाओं के आकार, रूप व रंग के अनुसार उनका फल बतलाया है। फिर अँगूठे के मूल में यवों का फल कहा गया है (गा. 26-27) तथा उनके द्वारा भाई, बहिन व पुत्र-पुत्रियों की सूचना दी गयी है (गा. 28-30)। फिर लेखक ने अँगूठे के नीचे यव, केदार, काकपद आदि के गुण-दोष बतलाये हैं (गा. 31-35)। फिर कनिष्ठिका अँगुली के नीचे की रेखाओं से पति-पत्नियों की सूचना दी गयी है (गा. 36-39)। तत्पश्चात् व्रत (गा. 40), मार्गण [खोज-बीन] (गा. 41) व गुरुदेव-स्मरण (गा. 42) सूचक रेखाओं का उल्लेख है। फिर लेखक ने अँगुलियों आदि पर भँवरी (गा. 43) व शंख (गा. 44) रूप चिह्नों का फल कहा है। फिर नखों के आकार व रंग आदि का फल कहा गया है (गा. 45) और उसके आगे मत्स्य, पद्म, शंख, शक्ति आदि चिह्नों की सूचना दी गयी है (गा. 46-53)। फिर हथेली पर बहु रेखाओं व अल्प रेखाओं का फल कहा गया है (गा. 54) और तत्पश्चात्

परोपकारी हाथ के लक्षण बतलाये गये हैं (गा. 55)। कुछ चिह्न ऐसे हैं जो धन, वंश व आयु रेखाओं के फलों को बढ़ा या घटा देते हैं (गा. 56)। जीवरेखा व कुलरेखा के मिल जाने का फल गा. 57 में तथा हाथ के स्वरूप का फल गाथा 58-59 में कहा गया है। कैसे यव वाचनाचार्य या उपाध्याय या सूरि होनेवाले पुरुष की सूचना देते हैं—यह गाथा 60 में बतलाया गया है। अन्त की गाथा में लेखक ने विनय के साथ बतलाया है कि यह ग्रन्थ उन्होंने संक्षेपतः यतिजनों के हितार्थ इसलिए लिखा है कि वे इसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता जानकर ही उसे व्रत दें।

दुर्भाग्य से लेखक ने अपना नाम व समय कहीं नहीं बतलाया और न हमारे पास कोई ऐसे साधन उपलब्ध हैं, जिनसे इन बातों का पता व अनुमान लगाया जा सके।

इस ग्रन्थ की भाषा प्रायः शुद्ध महाराष्ट्री है, क्योंकि इसमें 'त्' के लोप होने पर केवल उसका संयोगी स्वर 'य' श्रुति सहित या बिना उसके ही पाया जाता है; 'थ' के स्थान पर कहीं भी 'ध' न होकर सर्वत्र 'ह' ही हुआ है, और पूर्वकालिक कृदन्त अव्यय 'ऊण' प्रत्यय लगाकर बनाया गया है।

यद्यपि ग्रन्थ छोटा-सा है, तथापि वह इसलिए विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उसके द्वारा प्राकृत में शास्त्रीय साहित्य के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान विस्तृत होता है।

इस अवसर पर मैं भारतीय ज्ञानपीठ के अधिकारी वर्ग को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने इस पुस्तक को अपनी ग्रन्थमाला में सम्मिलित कर प्रकाशित करने की कृपा की।

किंग एडवर्ड कॉलेज, अमरावती

—प्रफुल्लकुमार मोदी

अप्रैल, 1947

FOREWORD

The human palms considerably differ from each other in their shape, structure, softness, colour, figures and lines. The anatomist explains that the skin covering the skeleton is tied down by certain fibres which not only hold them together but at the same time give rise to certain marks along the folding points of the skin. The unevenness of the palm, however, is due to the muscles of various sizes. He refuses to believe that this mechanical arrangement of flexion-folds has any psychic, occult or predictive signification.

The desire to know future is as old as man, and it increases all the more when man's environments are uncertain in every respect. The human palm, as it varies in a wonderfully interesting manner from person to person, has come to be the basis of a predictive system known as palmistry. The lines and figures on the hand, especially the palm, are symbolically interpreted; they are connected not only with mental and moral dispositions but are said to reflect also the current or future events in the individual's life. If some marks record past events, others indicate the future ones.

The prediction of human tendencies from marks on the body is a very old idea, often referred to in early Indian literature; and the system of palmistry is quite akin to it. As the interpretation of physical marks can be only symbolical, the basic presumptions in the East and West are not identical. The Indian system lays more stress on the lines, conches and wheels while the Western system takes into account the various mounts as well as lines: the meaning attached to the same line often varies.

The basic presumptions may not be verifiable, and some of the interpretations may not appeal to reason; still it is a fact that many a mind has a strong fascination for palmistry; and during later years palm-prints of eminent personalities are taken and certain conclusions are inductively arrived at. Palmistry has become a profession with many for worldly ends; but the author of the *Kara-lakkhaṇaṁ* which is edited here for the first time, has a more pious aim: he tells us that his object in writing this book was only to enable religious missionaries to prejudge the potentialities of a person and then only administer religious oaths and vows to him or her.

Palmistry as a system of predicting future has found place in ancient Indian wisdom as well, and a small text dealing with palmistry, the *kara-lakhaṇaṁ*, is being published here by the Bharatiya Jnanpith. The Prakrit taxt is accompanied by

Sanskrit *chāyā* and Hindi paraphrase : and all this is presented to us in a neat manner by the editor, Shri Prafulla Kumar Modi. Mr. Modi is an intelligent young scholar; and this edition augurs well of his potential abilities. Trained as he is under his father, Professor Dr. Hiralal Jain, it is expected that he would soon give us more and more of his researches in Prakrit and Sanskrit literature.

It is with the noble object of making known to the world the manifold aspects of ancient Indian culture and civilization that the Bharatiya Jnanpith has been established by Shri Shanti Prasad Jain. His zeal and generosity are worthily matched by the keen interest which his wife Shrimati Rama Rani takes in the publications of the Institution. Both of them deserve our best thanks. We have every hope that this Institution will bring out many worthy publications with the active cooperation of various scholars and make thereby the cultural heritage of our nation all the more rich.

A.N. Upadhye

Kolhapur,
15 August, 1947

INTRODUCTION

Palmistry has been practised in India from very ancient times. References to it are found in the *Purāṇas*, in the Pali books of the Buddhist canon as well as in the Prakrit works of the Jaina *āgama*. The Sanskrit name for palmistry is *Sāmudrika* and according to the *Agni-purāṇa*, it is so called because a teacher by name Samudra had taught it to Garga[1] in ancient times. Varāha-mihira also makes mention of it in his famous treatise on astrology *Bṛihat-saṁhitā*, in the chapters on *Mahāpuruṣa-lakṣaṇa* (chapters 67-69). Not only that, but the commentator Utpala Bhatta quotes many verses which he has ascribed to Samudra by saying '*yathāha Samudraḥ*', Jinasena in his *Harivaṁśa-purāṇa* mentions Sāgara as the author of a book on the characteristics of man (*Nara-lakkhaṇa*) a description of which occupies verses 55 to 107 of chapter 23. Of these thirteen verses from 85 to 97 are devoted to the signs of the hand and their significance, and therefore treat of palmistry in the strict sense of the term.

---

1. लक्षणं यत्समुद्रेण गर्गायोक्तं यथा पुरा। —*Agni-purāṇa* p. 242.

The work now under treatment is a small hand book on palmistry. The only old manuscript that was available to me bears the title of *Sāmudrika-śāstra.* But the real name of the work is *Kara-lakkhaṇaṁ* as is clear from the opening and the closing verses of the book. The whole work is completed in 61 verses composed in Prakrit *gāthās.* Its contents may be summarised as follows :

In the first verse the author pays homage to Jain Tīrthaṅkara Mahavīra and proposes to deal with the signs of the hands of men and women. According to verse two, a man gets profit or loss, happiness or sorrow, life or death, victory or defeat according to the lines (found on the palm of his hand). The signs of men, according to verse 3 should be studied on the right hand, and those of women on the left. The author then deals with the significance of the interval between the fingers (verse 4-5) and of the nature of their joints (verse 6). Then the lines of the wrist are dealt with (verses 7-11), and the five most significant lines denoting learning, family, wealth, beauty and longevity are named and described (verses 12-22). The form, shape and colour of the lines are explained in the next three verses (verses 23-25). Then the barley marks below the thumb are treated (verses 26-27), and they are said to indicate the number of brothers, sisters and children which a person may have (verses 28-39). The author then goes on the deal with the section of the palm below the thumb

(verses 31-35) and that below the smaller finger (verses 36-39). Amongst the latter are included some lines which would point out how many wives or husbands the person would have. There are, then, the lines indicating the religious tendencies (*vrata-rekhā*, v. 40), potentialities of research (*mārgaṇa-rekhā*, v. 42), and pious tendencies (v. 41). The author then goes on to describe the significance of the whirl marks (*Bhramara*, v. 43) and conch marks (*śaṁkha*, v. 44). The form and colour of nails are then treated (verse 45), continued by a treatment of the marks of fish, lotus, cross, etc. (verses 46-53). The significance of too many lines or too few lines on the palm is then shown (verse 54). What sort of hand denotes possibilities of service to humanity is then explained (verse 55). How certain specific marks aggrevate or assuage, heighten or decrease the effect of other marks and signs is then shown (v. 56). The effect of the life line and family line joining together is then stated (v. 57) and then the effect of the form and make up of the hand as a whole is given (v. 58-59). What lines indicate a would be saint or teacher is then explained (v.60); and lastly, the author meekly tells us that his object in writing the book was only to enable religious missionaries to prejudge the potentialities of a person and then only administer the religious oaths and vows to him or her.

Unfortunately, the author has not given us anywhere his name or date of the composition;

and there is no material at present available to me to determine these with any precision.

The language of the work is almost pure Maharashtri Prakrit, being there the vowels left with or without the *ya-śruti* when '*ta*' is dropped; '*tha*' never being changed to '*dha*' but always to '*ha*' and *'ūṇa'* being the past participle absolute termination.

The work, small though it be, is valuable as it enriches our knowledge about the literature in Prakrit devoted to technical subjects.

I take this opportunity to thank the authorities of the Bharatiya Jnanpith, for undertaking to publish this work in their series.

King Edward College,
Amarawati.

P.K. Modi

April 1947

विषय-सूची

	गाथा क्रम
भगवान् महावीर को प्रणमन और विषय-प्रतिज्ञा	1
रेखाओं का महत्त्व	2
पुरुष और स्त्री के लक्षण भिन्न हाथों में	3
अँगुलियों के बीच में अन्तर का फल	4-5
अँगुलियों के पर्वों का फल	6
मणिबन्ध (कलाई) की रेखाओं का फल	7-11
पंचरेखा से पूर्वकर्म का निर्देश	12
विद्या-रेखा	13
कुल-रेखा	14
धन-रेखा	16
ऊर्ध्व-रेखा	17-18
सम्मान-रेखा	19
समृद्धि-रेखा	20
आयु-रेखा	21-22
रेखाओं के स्वरूप और रंग का फल	23-25
अँगूठे के नीचे यवों का फल	26-27
भाई-बहिन बतानेवाली रेखाएँ	28
सन्तान बतानेवाली रेखाएँ	29-30

अँगूठे के नीचे समफल यवों का फल	31
अँगूठे के बीच 'केदार' का फल	32
अँगूठे के केदार को काटनेवाली रेखाओं का फल	33
अँगूठे के मूल में काकपद का फल	34
अँगूठे के बीच में यवों का फल	35
पुरुष की पत्नियाँ और स्त्रियों के पति बतानेवाली रेखाएँ	36-37
छोटी अँगुली के मूल की रेखाओं का फल	38-39
धर्म-रेखा	40
मार्गण-रेखा	41
व्रत-रेखा	42
भौंरी-फल	43
शंख-फल	44
नखों के स्वरूप और रंग का फल	45
मत्स्य, पद्म आदि चिह्नों का फल	46-52
हाथ के बीच में काकपद का फल	53
बहुरेखा तथा बिना रेखावाले हाथ का फल	54
परोपकारी हाथ के लक्षण	55
सूची व अग्निशिखा चिह्न का प्रभाव	56
जीवरेखा के कुलरेखा से मिल जाने का फल	57
हाथ के स्वरूप का फल	58-59
आचार्य, उपाध्याय व सूरि बतानेवाली रेखा	60
ग्रन्थ लिखने का उद्देश्य	61

कर-लक्खणं

पणमिय जिणममिअगुणं गयरायसिरोमणिं महावीरं।
वोच्छं पुरिसत्थीणं करलक्खणमिह समासेण ॥1॥

प्रणम्य जिनममितगुणं गतरागशिरोमणिं महावीरम्।
वक्ष्ये पुरुष-स्त्रियोः करलक्षणमिह समासेन॥

अनन्त गुणों के धारक तथा राग के जीतनेवालों में शिरोमणि, महावीर जिनेन्द्र को प्रणाम करके, मैं पुरुष और स्त्रियों के हस्त-रेखाओं के लक्षण संक्षेप में बतलाता हूँ।

पावइ लाहालाहं सुहदुक्खं जीविअं च मरणं च।
रेहाहिं जीवलोए पुरिसो विजयं जयं च तहा ॥2॥

प्राप्नोति लाभालाभौ सुखदुःखे जीवितं च मरणं च।
रेखाभिः जीवलोके पुरुषः विजयं जयं च तथा॥

इस जीवलोक में मनुष्य लाभ और हानि, सुख और दुःख, जीवन और मरण, जय और पराजय रेखाओं के बल से पाता है।

दाहिणहत्थे पुरिसाण लक्खणं वामयम्मि महिलाणं।
रेहाहिं सुद्ध णिज्झाइऊण[1] तो लक्खणं सुणह ॥3॥

दक्षिणहस्ते पुरुषाणां लक्षणं वामके महिलानाम्।
रेखाभिः शुद्धं निर्ध्याय तल्लक्षणं शृणुत[2]॥

---

3. (1) प्रतौ 'णिज्झाकुणं' इति पाठः। (2) प्रतौ 'जानीहि' इति पाठः।

पुरुषों के लक्षण दाहिने हाथ की तथा स्त्रियों के बायें हाथ की रेखाओं को खूब ध्यान से देखकर जाने जाते हैं। उन लक्षणों को सुनो। हाथों के स्वरूप का फल वराहमिहिर ने इस प्रकार बताया है—जिनके हाथ वानरसदृश हों वे धनी और जिनके व्याघ्र के समान हों वे पापी होते हैं। *(बृहत्संहिता 67, 37)*

अङ्गुल्यन्तरफलम्

बालत्तणम्मि सुलहं पएसिणी-मज्झमंतरघणम्मि।
मज्झिम-अणामियाणंतरम्मि[1] तरुणत्तणे सुक्खं ॥4॥

बालत्वे सुलभं प्रदेशिनीमध्यमान्तरघने।
मध्यमाऽनामिकयोः अन्तरे सघने तरुणत्वे सौख्यम् ॥

यदि प्रदेशिनी और मध्य की अँगुलियों का अन्तर सघन हो (अर्थात् वे एक दूसरे से मिली हों और मिलने से उनके बीच में कोई अन्तर न रहे) तो बालकपन में सुख होवे। यदि मध्यमा और अनामिका के बीच सघन अन्तर हो तो जवानी में सुख हो।

हाथ की अँगुलियों का फल वराहमिहिर ने इस प्रकार बताया है—लम्बी अँगुलियाँ दीर्घजीवियों की, अवलित (सीधी) सुभगों की, सूक्ष्म (पतली) बुद्धिमानों की और चपटी दूसरों की सेवा करनेवालों की होती हैं। मोटी अँगुलियोंवाले निर्धन और बाहर को झुकी अँगुलियोंवाले शस्त्र से मरनेवाले होते हैं।

(बृहत्संहिता 67, 36-37)

विरली अँगुलियों से मनुष्य निर्धन तथा सघन से धनसंचय करनेवाले होते हैं। *(बृहत्संहिता 67, 43)*

---

4. (1) प्रतौ "तरणम्मि' इति पाठः।

पावइ पच्छा सुक्खं कणिट्ठिआणामिअंतरघणम्मि।
सव्वंगुलीघणम्मि अ होइ सुही धणसमिद्धो अ ॥5॥

प्राप्नोति पश्चात् सौख्यं कनिष्ठिकाऽनामिकान्तरघने।
सर्वाङ्गुलीघने च भवति सुखी धनसमृद्धश्च ॥

यदि कनिष्ठिका और अनामिका में सघन अन्तर हो तो बुढ़ापे में सुख होवे। यदि सभी अँगुलियाँ सघन हों तो मनुष्य सदा सुखी और धन-सम्पन्न होता है।

अङ्गुल्यन्तरफले पर्वाणां फलम्

सम्मंसंगुलिपव्वो पुरिसो धणवं सुही सया होइ।
जइ सो अमंसपव्वो ता तस्स सिरी ण संभवइ ॥6॥

समांसाङ्गुलिपर्वा पुरुषोः धनवान् सुखी सदा भवति।
यदि स अमांसपर्वा तर्हि तस्य श्रीः न सम्भवति ॥

जिस पुरुष की अँगुलियों के पर्व मांसल हों वह धनवान् और सदा सुखी होता है। यदि उसके पर्व मांसल न हों तो उसके धन नहीं होता।

वराहमिहिर के अनुसार जिनकी अँगुलियों के पर्व (पोर) लम्बे हों वे सौभाग्यवान् और दीर्घायु होते हैं।

(बृहत्संहिता 67, 42)

मणिबन्धविषये गाथापञ्चकम्

धणकणगरयणजुत्तो मणिबंधे जस्स तिण्णि रेहाओ।
आहरणविविहभागी पच्छा भद्दं च सो लहइ ॥7॥

धनकनकरत्नयुक्तः मणिबन्धे यस्य तिस्रः रेखाः।
आभरणविविधभागी पश्चात् भद्रं च स लभते ॥

जिसके मणिबन्ध (कलाई) पर तीन रेखाएँ हों उसे धान्य, सुवर्ण और रत्नों की प्राप्ति होती है, उसे नाना प्रकार के आभूषणों का उपभोग मिलता है तथा अन्त में उसका कल्याण होता है।

महुपिंगलाहिं सुहिआ अविणट्ठवया हवंति रत्ताहिं।
सुहमाहिं मेहावी सुभगा य समत्तमूलाहिं ॥8॥

मधुपिङ्गलाभिः सुखिताः अविनष्टव्रताः भवन्ति रक्ताभिः।
सूक्ष्माभिः मेधावी सुभगाश्च समत्वमूलाभिः ॥

यदि इन रेखाओं का रंग मधु (शहद) के समान पिंगल (लालकत्था रंग) का हो तो पुरुष सुखी होते हैं; यदि रक्त के समान लाल हो तो उनका कभी व्रत भंग नहीं होता; यदि सूक्ष्म हो तो वे बुद्धिमान् होते हैं; तथा यदि उनका मूल सम हो तो वे सुभग अर्थात् सुरूपवान् और भाग्यवान् होते हैं।

मणिबन्ध के स्वरूप का फल वराहमिहिर ने इस प्रकार बताया है—जिनका मणिबन्ध (कलाई) गठा हुआ और दृढ़ हो वे राजा होते हैं, ढीला होने से हाथ काटा जाता है तथा शब्द उत्पन्न करनेवाला हो तो पुरुष दरिद्री होता है। (बृहत्संहिता 67, 38)

तिप्परिखित्ता पयडा जवमाला होइ जस्स मणिबंधे।
सो होइ धणाइण्णे खत्तिय पुण पत्थिवो होइ ॥9॥

त्रिपरिक्षिप्ता प्रकटा यवमाला भवति यस्य मणिबन्धे।
स भवति धनाकीर्णः क्षत्रियः पुनः पार्थिवो भवति ॥

जिसके मणिबन्ध में यवमाला की तीन धाराएँ हों वह धन से परिपूर्ण होता है और यदि वह क्षत्रिय हो तो राजा बनता है।

दुप्परिखित्ता रम्मा जवमाला होइ जस्स मणिबंधे।
सो हवइ रायमंती विउलमई ईसरो होइ ॥10॥

द्विपरिक्षिप्ता रम्या यवमाला भवति यस्य मणिबन्धे।
स भवति राजमन्त्री विपुलमतिः ईश्वरो भवति ॥

जिसके मणिबन्ध में यवमाला की दो धाराएँ हों वह राजमन्त्री होता है, और उसमें यदि विशाल बुद्धि हुई तो वह राजा भी बनता है।

इक्कपरिक्खित्ता पुण जवमाला दीसए सुमणिबंधे।
सिट्ठी धणेसरो होइ तह य जणपुज्जियो पुरिसो ॥11॥

एकपरिक्षिप्ता पुनः यवमाला दृश्यते स्वमणिबन्धे।
श्रेष्ठी धनेश्वरः भवति तथा च जनपूजितः पुरुषः ॥

और जिसके मणिबन्ध में यवमाला की एक ही धारा दिखे वह पुरुष धनेश्वर सेठ बनता है और सब लोग उसकी पूजा करते हैं।

विज्जाकुलधणरूवं रेहतिअं आउ-उड्ढरेहाओ।
पंच वि रेहाओ करे जणस्स पयडंति[1] पुव्वकयं ॥12॥

विद्याकुलधनरूपं रेखात्रितकं आयुः ऊर्ध्वरेखा।
पञ्चापि रेखाः करे जनस्य प्रकटयन्ति पूर्वकृतम् ॥

पुरुष के हाथ की पंचरेखाएँ उसके पूर्वजन्म के कर्मों को सूचित करती हैं। इनमें तीन विद्या, कुल और धनरूप हैं, एक आयु की रेखा और एक ऊर्ध्व रेखा है।

करतल अर्थात् हाथ के तलुए के स्वरूप का फल वराहमिहिर ने इस प्रकार बताया है—तलुआ गहराई लिये होने से मनुष्य पैतृक

---

12. (1) प्रतौ 'पणयंति' इति पाठः।

सम्पत्ति से वञ्चित रहते हैं, गहराई गुलाई लिये होने से धनी होते हैं तथा तलुआ ऊपर को उठा हुआ होने से दातार होते हैं। जिनका तलुआ विषम अर्थात् ऊँचा-नीचा हो वे निर्धन होते हैं। जिनका लाल हो वे ईश्वर (धनी), जिनका पीला हो वे व्यभिचारी तथा जिनका रूखा हो वे निर्धन होते हैं। *(बृहत्संहिता 67, 39-40)*

जिनसेनाचार्य ने भी इसी प्रकार लक्षण बतलाये हैं। इतना विशेष है कि वे गहराई लिये तलुएवाले को नपुंसक भी कहते हैं। *(हरिवंश-पुराण 23, 91)*

विद्यारेखा

तथाहि—

मणिबंधाओ रेहा अंगुट्ठ पएसिणीण मज्झगया।
सा कुणइ सत्थजुत्तं विण्णाणविअक्खणं पुरिसं ॥13॥

मणिबन्धात् रेखा अङ्गुष्टप्रदेशिन्योः मध्यगताः।
स करोति शास्त्रयुक्तं विज्ञानविचक्षणं पुरुषम् ॥

मणिबन्ध से प्रारम्भ होकर जो रेखा अँगूठा और प्रदेशिनी के बीच तक जाती है वह पुरुष को शास्त्र का ज्ञाता और विज्ञान में कुशल बनाती है।

कुलरेखाविषये गाथायुग्मम्

मणिबंधाओ पयडा पएसिणी जाव जाइ जस रेहा।
बहुबंधुसमाइण्णं कुलवंसं णिद्दिसे तस्स ॥14॥

मणिबन्धात् प्रकटा प्रदेशिनीं यावत्[1] याति यस्य रेखा।
बहुबन्धुसमाकीर्णं कुलवंशं निर्दिशेत्[2] तस्य ॥

---

14. (1) प्रतौ 'प्रदेशिनी या च' इति पाठः। (2) प्रतौ 'निर्देशयति' इति पाठः।

मणिबन्ध से प्रकट होकर जिसकी रेखा प्रदेशिनी तक जाती है, उसकी वह रेखा बहुत से बन्धुओं से युक्त कुल और वंश की द्योतक है।

दीहाइ जाण दीहं कुलवंश मडहिअं मडहिआए।
बुच्छिण्णाए छिण्णं जाणसु भिण्णं च भिण्णाए ॥15॥

दीर्घया जानीहि दीर्घं कुलवंशं लघुकं लघुकया।
व्युच्छिन्नया छिन्नं जानीहि भिन्नं च भिन्नया ॥

यदि यह रेखा दीर्घ हो तो उसका कुल और वंश भी दीर्घ (अर्थात् पुरानी परम्परा वाला) जानो। यदि रेखा छोटी हो तो कुल और वंश भी ओछा जानो। और यदि यह रेखा छिन्न हो तो कुलवंश भी व्युच्छिन्न (विनष्ट) और भिन्न हो तो भिन्न (विभाजित) जानो।

धनविषये

मणिबंधाओ पयडा संपत्ता मज्झिमंगुलिं रेहा।
सा गुणइ धणसमिद्धं देसक्खायं तमायरियं ॥16॥

मणिबन्धात् प्रकटा सम्प्राप्ता मध्याङ्गुलिं रेखा।
सा करोति धनसमृद्धं देशख्यातं तमाचार्यम् ॥

मणिबन्ध से प्रकट होकर जो रेखा मध्यम अँगुलि तक गयी हो वह पुरुष को धनसमृद्ध, देशप्रसिद्ध आचार्य (उपदेशक) बनाती है।

अक्खंडा अप्फुडिया अपल्लवा आयया अछिण्णा य।
इक्का वि उद्धरेहा सहस्सजणपोसिणी[1] भणिया ॥17॥

---

17. (1) प्रतौ 'पोसणी' इति पाठः। (2) प्रतौ 'पोषणा' इति पाठः।

अखण्डा अस्फोटिता अपल्लवा आयता अच्छिन्ना च।
एकापि ऊर्ध्वरेखा सहस्रजनपोषिणी भणिता ॥

एक ही ऊर्ध्वरेखा यदि वह अखण्ड हो, फूटी न हो, उसकी शाखाएँ न हों, चौड़ी हो और छिन्न न हो तो हजार मनुष्यों के भरण-पोषण की योग्यता रखती है।

विप्पाणं वेदकरी रज्जकरी खत्तिआण सा भणिआ।
वेसाणं अत्थकरी सुक्खकरी सुद्दलोआणं ॥18॥

विप्राणां वेदकरी राज्यकरी क्षत्रियाणां सा भणिता।
वैश्यानामर्थकरी सौख्यकरी शूद्रलोकानाम् ॥

यही रेखा विप्रों को वेदज्ञाता बनानेवाली है, क्षत्रियों को राज्य दिलानेवाली है, वैश्यों को अर्थलाभ करानेवाली है और शूद्र लोगों को सुख उपजानेवाली कही गयी है।

मणिबंधाओ पयडा संपत्तमणामिअंगुलिं रेहा।
सा कुणइ सत्थवाहं नरवइसयपुज्जियं पुरिसं ॥19॥

मणिबन्धात् प्रकटा सम्प्राप्ता अनामिकाङ्गुलिं रेखा।
सा करोति सार्थवाहं नरपतिशतपूजितं पुरुषम् ॥

मणिबन्ध से प्रकट होकर जो रेखा अनामिका तक जाती है, वह पुरुष को सार्थवाह अर्थात् किसी दल का नायक (अगुआ) बनाती है, जिसकी सैकड़ों नरेश पूजा करते हैं।

ऊर्ध्वरेखाविषये गाथा

मणिबंधाओ पयडा पत्ता चरिमंगुलिं तु जा रेहा।
सा कुणइ जससमिद्धिं सिट्ठिं वा विभवसंजुत्तं ॥20॥

मणिबन्धात् प्रकटा प्राप्ता चरमाङ्गुलिं तु या रेखा।
सा करोति यशःसमृद्धिं श्रेष्ठिनं वा विभवसंयुक्तम् ॥

मणिबन्ध से प्रकट होकर जो रेखा अन्तिम अर्थात् छोटी अँगुलि तक जाती है वह खूब यश दिलाती है और यदि पुरुष सेठ हो तो उसका खूब वैभव बढ़ाती है।

आयुरेखाफलम्

बीसं तीसं चत्ता पण्णासं सट्ठि सत्तरिं असिअं।
णउयं कणट्ठियाऊ पएसिणीं जाव जाणिज्जा ॥21॥

विंशतिः त्रिंशत् चत्वारिंशत् पंचाशत् षष्टिः सप्तति: अशीतिः।
नवतिः कनिष्ठिकायाः आयुः प्रदेशिनीं यावत् जानीयात् ॥

कनिष्ठिका से लगाकर प्रदेशिनी तक रेखा के अनुसार बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर, अस्सी और नव्वे वर्ष की आयु जानो। अर्थात् छोटी अँगुलि के प्रारम्भ में समाप्त हो जानेवाली रेखा बीस वर्ष की आयु सूचित करती है और उसके अन्त तक जानेवाली तीस वर्ष की। इसी प्रकार अनामिका के प्रारम्भ तक जानेवाली चालीस और अन्त तक जानेवाली पचास वर्ष की आयु बतलाती है। मध्यमा के प्रारम्भ तक जानेवाली रेखा से साठ और अन्त तक जानेवाली से सत्तर वर्ष की आयु का बोध होता है, तथा प्रदेशिनी के प्रारम्भ तक अस्सी और अन्त तक नव्वे वर्ष की आयु मानी जाती है।

काणंगुलीइ रेहा पएसिणीं लंघिऊण जस्स गया।
अखंडिआ अप्फुडिया वरिसाण सयं च सो जियइ ॥22॥

कनीनिकाङ्गुलिरेखा प्रदेशिनीं लङ्घयित्वा यस्य गता।
अखण्डिता अस्फुटिता वर्षाणां शतं च स जीवति ॥

कनीनिका से चलनेवाली जिसकी रेखा प्रदेशिनी को पार कर जाती है और अखण्डित हो, फूटी न हो, वह सौ वर्ष जीता है।

द्वारगाथा

पल्लविआ विच्छिण्णा विरला विसमा य णिद्दिसे[1] रेहा।
हरिआ फुडिअ विवण्णा नीला रुक्खा तहा चेव ॥ 23॥

पल्लविता विच्छिन्ना विरला विषमा च निर्दिशेत्[2] रेखा।
हरिता स्फुटिता विवर्णा नीला रूक्षा तथा चैव[3] ॥

रेखा के स्वरूप इस प्रकार बताये गये हैं—पल्लवित, विच्छिन्न, विरल, विषम, हरित, स्फुटित, विवर्ण, नील और रूक्ष।

आयुर्धनरेखा

पल्लविया संकिलेसा विच्छिण्णासु पावए महादुक्खं।
विरला धणव्वयकरी णीइधणं णत्थि विसमासु ॥24॥

पल्लविता संक्लेशा विच्छिन्नासु प्राप्नोति महादुःखम्।
विरला धनव्ययकरी नीतिधनं नास्ति विषमासु ॥

पल्लवित रेखा क्लेशदायिनी होती है, विच्छिन्न रेखा महादुःख पहुँचाती है, विरल रेखा धन का व्यय कराती है और विषम से नीतिपूर्वक अर्जित धन नहीं होता।

हरियासु चोरियधणं फुडिअविवण्णासु बंधणमुवेइ।
णीलासु णिव्वुइण्णो[1] रुक्खासु मिअभोगभागी अ ॥25॥

हरितासु चौर्यधनं स्फुटितविवर्णासु बन्धनमुपैति।
नीलासु निर्विण्णः रूक्षासु मितभोगभागी च ॥

---

23. (1) प्रतौ 'णिद्दसे' इति पाठः। (2) प्रतौ 'निर्दिशति' इति पाठः। (3) प्रतौ 'एवम्' इति पाठः।

25. (1) प्रतौ 'णिवुईण्णो' इति पाठः।

हरित से धन चोरी चला जाता है (अथवा चोरी का धन मिलता है); स्फुटित और विवर्ण से बन्धन अर्थात् गिरफ्तारी भोगनी पड़ती है, नीले से निर्विण्ण अर्थात् उदास रहता है और रूक्ष से परिमित भोग भोगने को मिलते हैं।

वराहमिहिर के अनुसार चिकनी और गहरी रेखाएँ धनी पुरुषों की, तथा इससे विपरीत निर्धनों की होती हैं।

(बृहत्संहिता 67, 43)

अङ्गुष्ठफलसम्बन्धिरेखाविषये गाथानवकम्

अङ्गुष्ठस्य मणिबन्धफलम्

अंगुट्ठयस्स मूले या तिपरिखित्ता समे जवे जस्स।
सो होइ धणाइण्णो खत्तिय पुण पत्थिओ होइ ॥26॥

अङ्गुष्ठकस्य मूले या त्रिपरिक्षिप्ताः समा यवाः यस्य।
स भवति धनाकीर्णः क्षत्रियः पुनः पार्थिवो भवति ॥

अँगूठे के मूल में जिसके तीन समान यव हों वह धनवान् होता है, और यदि क्षत्रिय हो तो राजा बनता है।

दुप्परिक्खित्ताई पुणो णरवइसमपुज्जिओ णरो होइ।
एगपरिक्खित्ताए जवमालाए धणेसरो होइ ॥27॥

द्विपरिक्षिप्तया पुनः नरपतिशतपूजितो नरो भवति।
एकपरिक्षिप्तया यवमालया धनेश्वरो भवति ॥

यदि दो यव हों तो पुरुष सैकड़ों नरेशों से पूजा जाता है, और यदि एक ही यवमाला की धारा हो तो वह धनेश्वर होता है।

वराहमिहिर ने अँगूठे के यवों का फल इस प्रकार बताया है—अँगूठे के बीच के यवों से मनुष्य धनी और अँगूठे के मूल के यवों से पुत्रवान् होता है। (बृहत्संहिता 67, 42)

अंगुट्ठयस्स मूले जत्तिअमित्ताउ थूलरेहाओ।
ते हुंति भाविआ किर तणुआहिं होंति बहिणीओ ॥28॥

अङ्गुष्ठकस्य मूले यावन्मात्राः स्थूलरेखाः।
ते भवन्ति भ्रातरः किल तन्वीभि र्भवन्ति भगिन्यः ॥

अँगूठे के मूल में जितनी स्थूल रेखाएँ हों उतने भाई होते हैं और जितनी सूक्ष्म रेखाएँ हों उतनी बहिनें होती हैं।

पुत्रपुत्रिकाविषये

अंगुट्ठयस्स हिट्ठे रेहाओ जस्स जत्तिआ हुंति।
तत्तिअमित्ता पुत्ता तणुआहिं दारिया हुंति ॥29॥

अङ्गुष्ठकस्य अधः रेखाः यस्य यावन्त्यः भवन्ति।
तावन्मात्राः पुत्राः तन्वीभिः दारिकाः भवन्ति ॥

अँगूठे के अधोभाग में जिसके जितनी रेखाएँ हों उसके उतने ही पुत्र होते हैं। यदि रेखाएँ सूक्ष्म हों तो उतनी लड़कियाँ होती हैं।

जत्तियमित्ता छिण्णा भिण्णा ते दारिआ मुआ जाण।
अच्छिण्णा अब्भिण्णा जीवंति अ तत्तिआ तणुआ ॥30॥

यावन्मात्राः भिन्नाः भिन्नाः ता दारिका मृताः जानीहि।
अच्छिन्नाः अभिन्ना जीवन्ति च तावन्तः तनुजाः ॥

जितनी रेखाएँ छिन्न-भिन्न हों उतनी सन्तानें मृत जानो। जितनी रेखाएँ अच्छिन्न और अभिन्न हों उतनी सन्तानें जीती हैं।

अंगुट्ठयस्स हिट्ठे अखंडे समफले जवे जस्स।
तस्स य खाणं पाणं मल्लं सव्वत्थ संपयडइ ॥31॥

अङ्गुष्ठकस्य अधः अखण्डः समफलः यवो यस्य।
तस्य च खानं पानं माल्यं सर्वत्र सम्प्राप्नोति[1] ॥

अँगूठे के अधोभाग में जिसके अखण्ड और समफल यव हों उसे खान-पान और माला (सम्मान) सर्वत्र मिलते हैं।

अंगुट्ठयस्स मज्झे केदारं जइ हविज्ज पुरिसस्स।
सो होइ सोक्खभागी पावइ पुण खत्तिओ रज्जं ॥32॥

अङ्गुष्ठकस्य मध्ये केदारं यदि भवेत् पुरुषस्य।
स भवति सौख्यभागी प्राप्नोति पुनः क्षत्रियः राज्यम् ॥

अँगूठे के मध्य में यदि केदार हो तो वह पुरुष सुखभोग पाता है और वह यदि क्षत्रिय हो तो राज्य पावे।

केआरमइगयाओ रेहाओ जत्तिआउ दीसंति।
तित्ताइं बंधणाइं पावइ अत्थक्खयं पुरिसो ॥33॥

केदारमतिगताः रेखाः यावन्त्यः दृश्यन्ते।
तावन्ति बन्धनानि प्राप्नोति अर्थक्षयं पुरुषः ॥

केदार को काटकर जाती हुई जितनी रेखाएँ दिखें, पुरुष उतने ही बार गिरफ़्तारी (जेलख़ाना) भोगे और धन का क्षय हो।

अंगुट्ठयस्य मूले कागपयं होइ जस्स पुरिसस्स।
सो पच्छिमम्मि काले सूलेण विवज्जए पुरिसो ॥34॥

अङ्गुष्ठकस्य मूले काकपदं भवति यस्य पुरुषस्य।
स पश्चिमे काले शूलेन विपद्यते पुरुषः ॥

जिस पुरुष के अँगूठे के मूल में काकपद हो वह बुढ़ापे में शूली पाकर मरे।

31-(1) प्रतौ 'सम्प्रजायते' इति पाठः।

दाहिणहत्थंगुट्ठयमज्झे अ जवेण जाण दिण जायं।
वामंगुट्ठजवेणं णूणं जाणिज्ज णिसि जायं ॥35॥

दक्षिणहस्ताङ्गुष्ठकमध्ये च यवेन जानीहि दिने जातम्।
वामाङ्गुष्ठयवेन नूनं जानीयात् निशि जातम् ॥

दाहिने अँगूठे के मध्य में यव हो तो दिन में उसका जन्म हुआ है ऐसा जानो, और बायें अँगूठे के यव से रात्रि का जन्म समझो।

काणांगुलि-अधस्तनरेखाफलम्

काणंगुलीइ हिट्ठे रेहाओ जस्स जत्तिआ हुंति।
तत्तियमित्ता महिला महिलाण वि तत्तिआ पुरिसा ॥36॥

कनिष्ठाङ्गुलेः अधः रेखा यस्य यावन्त्यः भवन्ति।
तावन्मात्राः वनिताः वनितानामपि तावन्तः पुरुषाः ॥

कनिष्ठिका अँगुलि के नीचे जिसके जितनी रेखाएँ हों उस पुरुष के उतनी ही स्त्रियाँ होती हैं और स्त्रियों के उतने ही पति होते हैं।

दीहाहिं कोमारी धरिया फलिआहि तो विआणिज्जा।
सुण्णाहि असोहग्गं फुडिआहिं विइ हवे जाण ॥37॥

दीर्घाभिः कुमारिका धृता फलिताभिः विजानीयात्।
शून्याभिः असौभाग्यं स्फुटिताभिः व्रती भवेत् जानीहि ॥

यदि ये रेखाएँ दीर्घ हों तो जानो कुमारी-पाणिग्रहण हो, यदि फलित हों तो भी यह फल जानो। यदि शून्य हों तो असौभाग्य जानो और फूटी हों तो व्रती होना जानो।

काणाङ्गुलिमूलरेखा-फलम्

काणंगुलिमूलोवरि रेहाओ जस्स तिण्णि चत्तारि।
सो होइ पुण्णभागी रायाइणं पि णमणिज्जो ॥38॥

कनिष्ठाङ्गुलिमूलोपरि रेखाः यस्य तिस्रः चतस्रः।
स भवति पुण्यभागी राजादीनामपि नमनीयः ॥

कनिष्ठिका अँगुलि के मूल में जिसके तीन या चार रेखाएँ हों वह बड़ा पुण्यभागी होता है, राजा आदिक भी उसे नमस्कार करते हैं।

जइ ताउ दाहिणकरे आमूलाओ वि होइ जणपुज्जो।
अह वामे तो पच्छा सव्वेसिं सेवणिज्जइयो ॥39॥

यदि ताः दक्षिणकरे आमूलतः अपि भवति जनपूज्यः।
अथ वामे तत्पश्चात्सर्वेषां सेवनीयः (सेवकः) ॥

यदि ये रेखाएँ दाहिने हाथ में हों तो प्रारम्भ से ही लोग उसकी पूजा करें और यदि बायें हाथ में हों तो पीछे अर्थात् बुढ़ापे में सब लोग उसकी सेवा करें।

व्रतरेखाफल-विषये गाथा

जिट्ठाअणामिआणं मज्झाओ णिग्गयाउ वयरेहा।
तम्मूले जाओ पुण ताओ इह धम्मरेहाओ ॥40॥

ज्येष्ठानामिकयोः मध्ये निर्गता व्रतरेखाः।
तन्मूले याः पुनः ताः इह धर्मरेखाः ॥

ज्येष्ठा और अनामिका के बीच से निकलने वाली 'व्रतरेखाएँ' कहलाती हैं, तथा जो उनके मूल में प्रकट होती हैं वे 'धर्मरेखाएँ' कहलाती हैं।

मार्गणरेखा

तासुवरि तिरित्था जा सा पुण मग्गत्तणे भवे रेहा।
अप्फुडिआपल्लवदीहराहिं सो चेव तत्थ थिरो ॥41॥

तस्या उपरि तिर्यक्स्था या सा पुनः मार्गत्वेन भवेद् रेखा।
अस्फुटितापल्लवितदीर्घाभिः स एव तत्र स्थिरः ॥

धर्मरेखा के ऊपर जो तिरछी रेखा हो वह 'मार्गण' अर्थात् खोज करनेवाले की सूचक रेखा है। जिसके यह अस्फुटित, अपल्लवित और दीर्घ हो वह उसी कार्य में स्थिर रहे।

कुलरेहाए उवरिं मूलम्मि पएसिणीइ जा रेहा।
गुरुदेवसमरणं तस्स सा वि णिद्देसइ पुरिसस्स ॥42॥

कुलरेखायाः उपरि मूले प्रदेशिन्याः[1] या रेखा।
गुरुदेवस्मरणं तस्य सापि निर्दिशति पुरुषस्य ॥

कुल-रेखा के ऊपर, प्रदेशिनी के मूल में, जो रेखा हो वह उस पुरुष के गुरु और देवता का स्मरण रहेगा, यह बतलाती है।

अङ्गुलि-अङ्गुष्ठाग्रस्थभ्रमराणां फलम्

अंगुलिअंगुट्ठुवरिं हवंति भमराउ दाहिणावत्ता।
धणभागी जणपुज्जो धम्ममई बुद्धिमंतो अ ॥43॥

अङ्गुल्यङ्गुष्ठोपरि भवन्ति भ्रमराः दक्षिणावर्ताः।
धनभागी जनपूज्यः धर्मरतिः बुद्धिमान् च ॥

अँगुलियों और अँगूठे के ऊपर जिसके दाहिनी ओर घूमनेवाली भौंरी हो, वह धन का भोग करनेवाला, लोगों में पूज्य, धर्म में मति रखनेवाला और बुद्धिमान् होवे।

पावइ पच्छा सुक्खं पच्छिममुहसंठिए सुणह संखे।
अब्भंतराणणे पुण होहीसि णिरंतरं सोक्खं ॥44॥

42–1 प्रतौ 'प्रवेशिनी' इति पाठः।

प्राप्नोति पश्चात् सौख्यं पश्चिममुखसंस्थितः शृणु शङ्खः।
अभ्यन्तरानने पुनः भविष्यति निरन्तरं सौख्यम् ॥

यदि अँगुलियों और अँगूठे पर पश्चिममुख स्थित शंख हो तो बुढ़ापे में सुख मिले और यदि शंख का मुख भीतर को हो तो निरन्तर सुख मिले।

नखानां फलम्

मज्झुण्णया य सोणा अप्फडिया जस्स हुंति करणहरा।
सो राया धणवंतो विज्जाहिवई पसिद्धो अ ॥45॥

मध्योन्नताश्च श्रोणा अस्फुटिताः यस्य भवन्ति करनखाः।
स राजा धनवान् विद्याधिपतिः प्रसिद्धश्च ॥

जिसके हाथ के नख बीच में उठे हुए, लाल और अस्फुटित हों वह राजा, धनवान्, विद्यावान् और प्रसिद्ध होता है।

वराहमिहिर ने नखों के स्वरूप का फल इस प्रकार बताया है—जिनके नख तुष के समान (अर्थात् धान के वल्कल के समान बहुत रेखायुक्त और रुखे) हों वे नपुंसक होते हैं, जिनके चपटे और फटे हों वे धनहीन, जिनके बुरे विवर्ण (आभा रहित) हों वे परमुखापेक्षी तथा जिनके ताम्रवर्ण हों वे सेनापति होते हैं।

(बृहत्संहिता 67, 41)

मत्स्यादिफलविषये गाथासप्तकम्

बाहिरमुहसंठाणे[1] मच्छपये मीनसे (?) फलं होइ।
अब्भंतराणणे पुण होहत्ति णिरंतरं सोक्खं ॥46॥

---

46. (1) प्रतौ '... संठाणयग्मि मच्छपय' इति पाठः।

बहिर्मुखसंस्थाने मत्स्यपदे मीनसे (?) फलं भवति।
अभ्यन्तरानने पुनः भविष्यति निरन्तरं सौख्यम् ॥

यदि बाहर को मुख किये हुए मछली का चिह्न हो तो बुढ़ापे में (?) फल दे और यदि भीतर को मुखवाली मछली हो तो निरन्तर सुख होवे।

वरपउमसंखसत्तियभद्दासणकुंकुमत्थमयकुंभं।
वसहगयछत्तचामर दीसइ वज्जं च मगरं च[2] ॥47॥
तोरण-विमाण-केऊ जस्स ए होंति करयले पयडा।
तस्स पुण रज्जालाहो होही अचिरेण कालेण ॥48॥

वरपद्मशङ्खस्वस्तिकभद्रासनकुङ्कुमार्थमयकुम्भाः।
वृषभगजछत्रचामराणि दृश्यते वज्रं च मकरश्च ॥
तोरणविमानकेतवः यस्य एते भवन्ति करतले प्रकटाः।
तस्य पुनः राज्यलाभो भवति अचिरेण कालेन ॥

श्रेष्ठ पद्म, शंख, स्वस्तिक, भद्रासन, कुंकुम, अर्थ (सम्पत्ति) पूर्ण कुम्भ, बैल, गज, छत्र, चामर, वज्र, मगर, तोरण, विमान और केतु ये जिसके कर तल में दिखाई पड़ें उसे बहुत शीघ्र राज्य मिले।

मच्छेण अण्णपाणं कुंते सोभग्गभोयलाहं च।
दामेण जुअवलद्दं सिंहे सेणावई होइ ॥49॥

मत्स्येन अन्नपानं कुन्तेन सौभाग्यं भोगलाभं च।
दाम्ना ऋजुबलित्वं सिंहे सेनापति र्भवति ॥

मछली से अन्नपान मिलता है, कुन्त अर्थात् भाले से सौभाग्य और भोगों का लाभ, माला से खूब बल मिलता है तथा सिंह से सेनापति होता है।

---

47. (2) प्रतौ 'वज्जमगरं च' इति पाठः।

होइ धणं धण्णं व अ आणं वसहे वि सत्थए सोक्खं।
चक्केण होइ वरसिरि सिरिवच्छे इच्छिया भोया ॥50॥

भवति धनं धान्यमपि च आज्ञा वृषभेऽपि स्वस्तिकैः सौख्यम्।
चक्रेण भवति वरश्रीः श्रीवत्से ईप्सिताः भोगाः ॥

बैल के चिह्न से धन-धान्य और आज्ञा (हुकूमत) मिलते हैं। स्वस्तिक से सुख, चक्र से उत्तम लक्ष्मी और श्रीवत्स से इच्छित भोग प्राप्त करता है।

वराहमिहिर के अनुसार, वज्राकार रेखाओं से मनुष्य धनी होता है; मीनपुच्छ से विद्यावान्; शंख, छत्र, शिविका, गज, अश्व और पद्माकार रेखाओं से राजा; कलश, मृणाल, पताका, अंकुशाकार रेखाओं से ऐश्वर्यवान्; चक्र, असि, परशु, तोमर, शक्ति, धनुष और कुन्त के आकारवाली रेखाओं से सेनापति; ऊखलाकार से यज्वान; मकर, ध्वजा, कोष्ठागार के आकार से महाधनी; वेदीसदृश से अग्निहोत्री और वापी, देवकुलादि त्रिकोणाकार रेखाओं से होता है। *(बृहत्संहिता 67, 44-48)*

रज्जाभिसेअपट्टं पावइ भद्दासणं भवे जस्स।
पावइ अणंतसोक्खं गयचामरवज्जछत्तेहिं ॥51॥

राज्याभिषेकपट्टं प्राप्नोति भद्रासनं भवेद् यस्य।
प्राप्नोति अनन्तसौख्यं गजचामरवज्रछत्रैः ॥

जिसके भद्रासन का चिह्न हो वह राज्याभिषेकपट्ट पावे तथा गज, चामर, वज्र और छत्र चिह्नों से अनन्त सुख पावे।

मयरेण सहस्सधणं पउमे पुण लक्खधणवई होइ।
संखेण दहकोडिवई चक्केण णिहीसरो होइ ॥52॥

मकरेण सहस्रधनं पद्मेन पुनः लक्षधनपति र्भवति।
शङ्खेन दशकोटिपतिश् चक्रेण निधीश्वरो भवति ॥

मगर से हजारों का धन मिले; तथा पद्म से लाखों का धनपति होता है। शंख से दश करोड़ का स्वामी होवे और चक्र से निधीश्वर होता है।

जघन्यफलविषये गाथाद्वयम्

कागपयं च सुलिहिअं करस्स मज्झम्मि दीसए जस्स।
खिप्पं सो धणमज्जइ पुणो वि णासइ खणो दव्वं ॥53॥

काकपदं च सुलिखितं करस्य मध्ये दृश्यते यस्य।
क्षिप्रं स धनमर्जयति पुनरपि नाशयति क्षणे द्रव्यम् ॥

जिसके हाथ के बीच स्पष्ट 'काकपद' लिखा दिखता हो, वह जल्दी धन कमायेगा और फिर जल्दी ही गमायेगा।

हुंति धणा वि हु अधणा बहुरेहारेहिएहिं हत्थेहिं।
आलिअकरा मणुस्सा परपीडपरायणा हुंति ॥54॥

भवन्ति धनाः अपि खलु[1] अधनाः बहुरेखारेखितैः हस्तैः।
अरेखाकरा मनुष्याः परपीडापरायणा भवन्ति ॥

बहुरेखावाले हाथों से धनी निर्धन हो जाते हैं; तथा जिनके हाथ में रेखाएँ नहीं हैं, वे मनुष्य दूसरों को पीड़ा देने में तत्पर रहते हैं।

फुडिआ पगूढगुप्पा विरलंगुलिविसमपव्वसंपण्णा।
णिम्मंसा कठिणतला एए परकम्मकरा होंति ॥55॥

स्फुटिताः प्रगूढगुल्माः विरलाङ्गुलिविषमपर्वसम्पन्नाः।
निर्मांसाः कठिनतलाः एते परकर्मकरा भवन्ति ॥

---

54. (1) प्रतौ 'स्फुटं' इति पाठः।

जो हाथ फैले-फूटे हों, जिनके गुल्म खूब गठे हुए हों, अँगुलियाँ विरली और विषमपर्व हों, जो बहुत मांसवाले न हों और जिनका तलुआ कड़ा हो, वे हाथ दूसरों के कार्य करनेवाले (अर्थात् परोपकारी या नौकरी करनेवाले) होते हैं।

धनादिरेखाविषये

सूई अग्गिसिहा वा सत्ति वा सिरी भज्जए जस्स।
धणवंसआउरेहं तारिसयं णिद्दिसे तस्स ॥56॥

सूची अग्निशिखा वा शक्तिः वा श्रीः भज्यते यस्य।
धनवंशआयुरेखाभिः तादृशं निर्दिशेत्[1] तस्य ॥

सूची या अग्निशिखा या शक्ति या श्री जिसके हाथ में विभाजित पड़ी हो, उसकी धन, वंश और आयु की रेखाएँ उसी अनुसार फल बताती हैं।

धनविषये

जिअरेहाउ[1] कुलरेहमागया जस्स होइ अखंडा।
रेहा अप्फुडिया से धणवुड्ढी होइ पुरिसस्स ॥57॥

जीवरेखा कुलरेखामागता यस्य भवति अखण्डा।
रेखा अस्फुटिता तस्य धनवृद्धि र्भवति पुरुषस्य ॥

जिसकी जीवरेखा कुलरेखा से आ मिली हो और अखण्ड हो, तथा रेखा फूटी न हो, उस पुरुष के धनवृद्धि होती है।

---

56. (1) प्रतौ 'निर्दिशति' इति पाठः। **57.** (1) प्रतौ 'जिअलोहा' इति पाठः।

सामान्यहस्तरेखाफलम्

वरपउमपत्तसरिसा अच्छिण्णा मंसला य संपुण्णा।
ससणिद्धरत्तरेहा धणकणगपडिच्छिआ हत्था ॥58॥

वरपद्मपत्रसदृशाः अच्छिन्नाः मांसलाश्च सम्पूर्णाः।
सस्निग्धरक्तरेखा धनकनकप्रतीप्सकाः हस्ताः ॥

जो हाथ उत्तम कमलपत्र के समान, अच्छिन्न, चिकने, सम्पूर्ण तथा चिकनी और लाल रेखाओं वाले हों, वे धान्य और सुवर्ण के ग्राहक होते हैं।

पूअंति पाणिरेहा णिद्धा जा होंति पउमसंकासा।
अक्खंडांजलिणिद्धा अच्छिण्णा कोमला जस्स ॥59॥

पूजयन्ति पाणिरेखाः स्निग्धाः याः भवन्ति पद्मसङ्काशाः।
अखण्डाञ्जलिस्निग्धाः अच्छिन्नाः कोमलाः यस्य ॥

जिसकी हस्तरेखाएँ कमल के समान स्निग्ध, अखण्ड, अच्छिन्न और कोमल होती हैं, वे पूजी जाती हैं।

वाचनाचार्यादिपदसूचिका गाथा

सो हवइ वायणारी कणिट्ठियाहिट्ठिमागया जवा जस्स।
उज्झाउ अणमिआए जिट्ठाहिट्ठायतो सूरी ॥60॥

स भवति वाचनाचार्यः कनिष्ठिकाधः आगताः यवाः यस्य।
उपाध्यायः अनामिकया ज्येष्ठाधः आयतः सूरिः ॥

जिसकी कनिष्ठिका के नीचे यव निकल आये हों वह वाचनाचार्य होता है, अनामिका के नीचे यव निकलने से उपाध्याय और ज्येष्ठा के नीचे यव निकलने से सूरि होता है।

इय करलक्खणमेयं समासओ दंसिअं जइजणस्स।
पुव्वायरिएहिं णरं परिक्खिऊणं वयं दिज्जा ॥61॥

इति करलक्षणमेतत् समासतः दर्शितं यतिजनस्य।
पूर्वाचार्यैः नरं परीक्ष्य व्रतं दीयेत् ॥

इस प्रकार पूर्वाचार्यों ने यतियों को करलक्षण, संक्षेप में बताये हैं। इनके द्वारा मनुष्य की परीक्षा करके व्रत देना चाहिए।

इति करलक्षणम्।

॥ इति सामुद्रशास्त्रं समाप्तम् ॥

पारिभाषिक-शब्दानुक्रमणिका

अ

अखण्ड गाथा 17, 22, 31
अग्निशिखा 56
अच्छिन्न 17, 58, 59
अनामिका 4, 19, 40, 60
अपल्लव 17, 41
अभ्यन्तरानन 44, 46
अर्थकारी 18
अर्थक्षय 33
अस्फुटित 17, 22, 41, 45, 57
अंगुलि 5, 20, 43
अंगुष्ठ 13, 26, 28, 29, 31
अन्तरघन 4, 5

आ

आचार्य 16
आयत 17
आयु 12, 56

ई

ईश्वर 10

उ

उपाध्याय गाथा 60

ऊ

ऊर्ध्वरेखा 12, 17

क

कनिष्ठिका 5, 21, 60
करलक्षण 1, 61
काकपद 34, 53
काणंगुलि 22, 36, 38
कुल 12, 14, 57
कुलरेखा 42
कुंकुम 47
कुन्त 49
कुम्भ 47
केदार 32, 33
कोमल 59
क्रोडपति 52

ग

गज 47, 51

गुरुदेवस्मरण गाथा 42
गुल्म 55

च

चक्र 50, 52
चामर 47, 51
चोरित धन 25

छ

छत्र गाथा 47, 51
छिन्न 15

ज

जीवरेखा 57
ज्येष्ठा 40, 60

त

तनुरेखा 28
तिर्यक्स्था 41
तोरण 48

द

दक्षिणावर्त 43
दाम 49
दारिका 29, 30
दीर्घ 41

ध

धन 12, 24, 25, 26
धन-व्यय 24
धनेश्वर गाथा 11, 27, 52
धर्मरेखा 40

न

नख 45
निर्मांस 55
निर्विण्ण 25
नीति 24
नील 23, 25

प

पद्म 47, 52, 57, 58, 59
परिक्षिप्त 9, 10, 11, 26, 27
पर्व 6, 55
पल्लवित 23, 24
पश्चात् 39, 44
पश्चिमकाल 34
पश्चिम मुख 44
प्रदेशिनी 4, 13, 14, 21, 22, 42
पार्थिव 9 , 26
प्राणरेखा 59
पुत्र 29
पूर्वकर्म 12
पूर्वाचार्य 61

ब

बहिर्मुख 46
बन्धन 25, 33
बन्धु 14

भ

भगिनी गाथा 28
भद्रासन 47, 51
भ्रमर 43
भ्राता 28
भिन्न 15

म

मकर 47, 52
मणिबन्ध 7,9,10,11,13,14,16,19
मत्स्य 49
मधुपिंगल 8
मध्यमा 4, 16
महादुःख 24
मार्गत्व 41
मांसल 58
मीन 46
मूल 40

य

यति 61
यव 26, 31, 35, 60
यवमाला 9, 10, 11, 27

र

रक्त 8, 58
राजमन्त्री 10
राज्य 32
राज्यकरी गाथा 18
रूक्ष 23, 25
रेखात्रिक 12

ल

लक्षण 3
लक्षपति 52

व

वज्र 47, 51
वंश 25, 56
व्रत 61
व्रतरेखा 40
वृषभ 47, 50
वाचनाचार्य 60
विच्छिन्ना 23, 24
विद्या 12
विप्र 18
विभव 20
विमान 48
विरला 23, 24
विरलांगुलि 55
विवर्ण 23, 25
विषमा 23, 24, 55
विज्ञान 13
वेदकरी 18
वैश्य 18

श

शक्ति गाथा 56
शंख 47, 52
शास्त्र 13
शूद्र 18
शून्य 37
शूल 34
श्री 56
श्रीवत्स 50
श्रेष्ठी 11, 20

स

समत्वमूल 8
समांस 6
सम्पूर्ण गाथा 58
सिंह 49
सुखकरी 18
सूची 56
सूरि 60
सूक्ष्म 8
सोण 45
स्वस्तिक 47, 50
स्निग्ध 58, 59
स्फुटित 23, 25, 37, 55
स्थूल रेखा 28

ह

हरित 23, 25

क्ष

क्षत्रिय 9, 18, 26, 32

□□